विषय-सूची

❀ शुद्धि पत्र ❀

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
३	२	ज्ञानमय	नानमय
६	१८	श्रेव्य	श्रेय
१८	१०	घानम	ज्ञानस
३४	१०	हो	हक

-

संग के सबसंगी इक्का के अनसंगी

भूमिका

(वीर श्रमण)

जिनमत मे ग्रन्थ लिखने की दो शैली हैं एक आगम और दूसरी अध्यात्म। आगम शैली का आशय बहिरात्मा को अशुभ निमित्तों को दुःख का कारण और शुभ निमित्तों को सुख का कारण बताकर उसे अन्तरात्मा बनाने का है। और अध्यात्म शैली का शुभ निमित्तों को भी दुःख का कारण बताकर परमात्मा बनाने का है। यह ग्रन्थ श्रीमद् योगेन्द्राचार्य ने अध्यात्म शैली मे प्रभाकर भट्ट को सम्बोधनार्थ रचा था। भट्ट जी का प्रश्न यह था कि हे प्रभो मुझे वह परमात्मा बताओ जो संसार के दुःखों से पार करे। तब आचार्य देव ने यह कहा कि तू बहिरात्मा पने को छोड़ कर अन्तरात्मा बन और उसके भी सब व्यवहारों को छोड़ कर देख तू ही तो परमात्मा है। यहा व्यवहार छोड़ने का उपदेश पढ़ि सुन कर छल न ग्रहण करना यहा तो जो म्लेच्छ वृत्ति छोड कर जो आर्य हुआ है उसे परमात्मा बनाने का है जैसे कसाई से हलवाई हुआ है वैसे कपडे की दुकान कराने के लिये लोग कहते हैं कि १०० कसाई और एक हलवाई ऐसा जानि जबतक खानपान है तबतक व्यवहार न छोड़े। अब जिनमत मे आगम और अध्यात्म शैली द्वारा अनादि पतन जीव को किस प्रकार उठाया जाता है उसको समझो।

❀ उदाहरण ❀

१—जैसे—आबड़ खाबड़ जमीन मे पहले ट्रैक्टर फिर पटला फिर हल आदि चलाकर बीज बोया जाता है। वैसे ही अज्ञानपूर्वक "अहं" वाले को "दासोहं" फिर दासोहं वाले को 'सोहं' और सोहं वाले को ज्ञान पूर्वक "अहं" सिखाया जाता है।

२—हिंसक को "दया" फिर "विवेकपूर्वक दया" अन्त में "स्वदया" (निष्क्रिया) सिखाया जाता है।

३—जीवाजीव के भेद न जानने वाले को इन्द्रियधारी जीव फिर रागद्वेष करने वाले को जीव अन्त में जानने देखने वाले को जीव बताया जाता है।

४—पर को तिरस्कार करने की क्रिया रूप एक हाथ के हिलाने वाले को, सब साधारण को दोनों हाथ जोड़ना फिर परमार्थियों को दोनों हाथ जोड़ना अन्त में दोनों हाथों को अपने हृदय की ओर जोड़ना सिखाया जाता है।

५—सब भक्षी को पांच उदम्बर तीन मकार का त्याग फिर २२ अभक्ष का त्याग फिर सब रसों का त्याग फिर सब आहार का त्याग अन्त में वर्णादि अरु रागादि भावों का त्याग का उपदेश।

६—सब पदार्थों को अपने मानने वाले को देह मात्र तेरी है फिर भाव मात्र तू है अन्त में मात्र जानने देखने वाला तू है।

७—अयोग्य जड़ क्रिया वाले को योग्य जड़ क्रिया (योग्य काय वचन) फिर योग्य भाव क्रिया फिर ज्ञान क्रिया का उपदेश है।

८—अशुभ चिन्तवन के निराकरणार्थ जिन स्तुति पढ़ना फिर णमोकार मंत्र का जाप करना फिर अरहंत के स्वरूप चिन्तवन करना फिर सिद्ध स्वरूप चिन्तवन करना बताया है।

ऊपर के सब उदाहरणों में से अंतिम वाक्य अध्यात्म शैली का है और शेष सब आगम शैली के वाक्य हैं।

❀ किन्तु ❀

ज्ञान जहां चारित नहीं, चारित जहां न ज्ञान।
देखो या कलिकाल में, नाक भंग या कान॥



॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

॥ श्री महा मुनि योगसागर-प्रणीत ॥

परमात्मप्रकाश

मैं वन्दौं वन्दौं उन्हें, जो वन्दन के योग्य ।
श्रुत परमात्म प्रकाश के, दोहा करूं मनोग्य ॥

मंगलाचरण

पूर्व हुए ध्यानाग्नि कर, कर्म कलंक जलाय ।
नित्य निरंजन ज्ञान मय, उन सिद्धनि सिर नाय ॥ १ ॥
मैं वन्दौं उन सिद्ध को, जो अब होहिं अनन्त ।
शिव मय अनुपम ज्ञान मय, परम समाधि धरन्त ॥ २ ॥
मैं वन्दौं उन सिद्ध को, जो निर्वाण वसन्त ।
परम समाधी अग्नि कर, अघ ईंधन भस्मन्त ॥ ३ ॥

मैं वन्दों उन सिद्ध को, जो निर्वाण बसन्त ।
ज्ञान गुरू त्रैलोक्य के, भव सागर न परन्त ॥ ४ ॥
म वन्दौं उन सिद्ध को, जो बसते निज माहि ।
लोकालोकहि सर्व को, यथा लखें भ्रम नाहि ॥ ५ ॥
केवल दर्शन ज्ञान मय, केवल सुक्ख स्वभाव ।
जिन वर वन्दों भक्ति युत जो भासत सब भाव ॥ ६ ॥
जो मुनि परम समाधि धर, परमातम को ध्याय
परमानन्द सु कारणे, उन त्रय मे सिर नाय ॥ ७ ।

परमात्मा कौन

वदि भाव से परम गुरु, अरु योगेन्द्र राव
भट्ट प्रभाकर वीन वे, करक निर्मल भाव ॥ ८
प्रभु बसते ससार म, बीतो काल अनन्त
किन्तु रच सुख नहि लहो, पायो दुख अतियन्त ॥ ९
चहुँगति दुख से दुखीका जो कोई प्रभु होय
उस दुख से जो काढ़ना, उसे बताओ मोय ॥ १०

आतम तीन प्रकार

पुनि पुनि बंदौ पच गुरु, भाव हृदय में धार
भट्टप्रभाकर सुनो तुम, आतम तीन प्रकार ॥ ११

त्रिविध आतमा जानकर, तजि बहिरातम भाव ।
लखि सुनाम से ज्ञानमय, परमातमा स्वभाव ॥ १२ ॥
बहिर रु अन्तर आतमा, परमातम मिलि तीन ।
देह विषे आपा लखे, बहिरातम सो चीन ॥ १३ ॥
देह भिन्न कर नान मय, देखे ब्रह्म स्वरूप ।
सो थिर परम समाधि में, अन्तर आतम रूप ॥ १४ ॥
लहा ज्ञान मय आतमा, सकल कर्म कर हान ।
अरु छोड़ा पर द्रव्यको, सो परमातम जान ॥ १५ ॥

परमात्मा की पहिचान

त्रिभुवन वन्दित सिद्धको, हरि हर जप प्रधान ।
मनको थिर कर उसीको, तू परमातम जान ॥ १६ ॥
नित्य निरजन ज्ञान मय, परमानन्द स्वभाव ।
जो ऐसा वह शांत शिव, जान उसी का भाव ॥ १७ ॥
जो निज भाव न परिहरे, पर को गहे न लेश ।
केवल सब को जानता, सो शिव समता भेष ॥ १८ ॥
जाके वरण न गंध रस, शब्द फर्श नहिं पास ।
जाके जनम न मरण हैं, नाम निरजन तास ॥ १९ ॥
जाके क्रोध न मोह मद, माया मान न पास ।
जाके थान न ध्यान लख, नाम निरजन तास ॥ २० ॥

जाके पुण्य न पाप है, हर्ष विषाद न पास।
जाके एक न दोष है, नाम निरंजन तास ॥ २१ ॥
जाके ध्येय न धारणा मन्त्र तन्त्र नहि पास।
मंडल मुद्रा आदि नहि, वही देव है खास ॥ २२ ॥
वेद शास्त्र गुरु मूति से, जाना जाय न मान।
श्रेष्ठ ध्यान के गम्य है, सो शाश्वत भगवान ॥ २३ ॥
केवल दर्शन ज्ञान मय, केवल सुक्ख स्वभाव।
केवल वीरज जानना, उसका उत्तम भाव ॥ २४ ॥
इत्यादिक लक्षण सहित जो प्रभु निष्कल श्रेय।
सो वह निवसे मुक्ति मे तीन लोक का ध्येय ॥ २५ ॥

देह मे परमात्मा मान

जैसा निर्मल ज्ञान मय, बसे देव शिव थान।
तैसा ब्रह्म शरीर मे, निवसे भेद न जान ॥ २६ ॥
निरखक देखे शीघ्र ही, पूर्व कर्म का ह्रास।
क्यों न लखे उस ब्रह्म को, जो तन करे निवास ॥ २७ ॥
जिसमे इन्द्री दु:ख सुख और न मन व्यापार
उस आतम को मान तू कर पर का परिहार ॥ २८ ॥
भेदाभेदहि दृष्टि से, निवसे देहादेह।
उस आतम को मान तू, औरनि सो क्या नेह ॥ २९ ॥

जीव अजीव न एक कर

जावाजीव न एक कर, लच्चण भेद सुभेद ।
पर को पर लखि मैं कर, आपा आप अभेद ॥ ३० ॥
अमन अनेंद्रिय ज्ञान मय, मूर्ति रहित चिन्मात्र ।
इन्द्रिय विषय न आतमा, यह लचण सुन पात्र ॥ ३१ ॥
भव तन भोग विरक्त मन, जो आतम को ध्याय ।
तिमकी लम्बी बेलडी, भव रूपी नश जाय ॥ ३२ ॥
देह दिवालय जो बसे, देव अनादि अनन्त ।
केवल ज्ञान प्रकाश मय, संशय बिन भगवन्त ॥ ३३ ॥
तन बसते भी नहिं छुये, तन को निश्चय मान ।
तन से जाय न छुआ वह, सो परमातम जान ॥ ३४ ॥
साम्य भाव परणति हुआ, जो कोई प्रगटाय ।
परमानन्द जनावता, सो परमातम थाय ॥ ३५ ॥
यदपि कर्म से बद्ध हैं, बसे देह के थान ।
तदपि न निश्चय देह मय, सो परमातम जान ॥ ३६ ॥
निश्चय नय से तन रहित, कर्म भिन्न अरु मान ।
तदपि कहे शठ देह मय, सो परमातम जान ॥ ३७ ॥
गगन अनत नक्षत्र इक, जैसे जग जिस ज्ञान ।
प्रतिबिंबित हो भासता, सो ईश्वर नित जान ॥ ३८ ॥

मुनि समूह कर ज्ञान मय, ध्यान योग्य जो ध्येय।
शिव कारण है निरन्तर, सो परमातमसेय ॥ ३९ ॥
जो जिय कारण पाय विधि, बहु विधि जग उपजाय।
तीन लिंग कर शोभता, सो परमातम थाय ॥ ४० ॥
जाके भीतर जग बसे, जग में जाको वास।
जग बसता भी नहिं बसे, सो परमातम खास ॥ ४१ ॥
तन बसते भी हरि हरा, जिसे न अब तक जान।
दिखे न परम समाधि बिन, सो परमातम जान ॥ ४२ ॥
जो उतपति व्यय कर सहित, या उतपति व्यय हान।
ऐसा तन में जिन लखा, सो परमातम जान ॥ ४३ ॥
जिसके तन में निवसते, इन्द्रिय गाव बसाय।
उजड़ हो परभव गये, सो परमातम थाय ॥ ४४ ॥
जो निज इन्द्रिय पाच से, जाने विषय जु पाच।
इन्द्रिय विषय अगोचरा, सो परमातम साच ॥ ४५ ॥
जिसके प्रगट न बन्ध है, और नहीं सन्सार।
उसे जान परमातमा, तज मन से व्यवहार ॥ ४६ ॥
वेलि थके मण्डप विना, ज्ञान थके विन ज्ञेय।
जिस पद में सब भासता, वह स्वभाव है श्रेय्य ॥ ४७ ॥

कर्म प्रगट करते सदा, निज निज काय बखान ।
कछु न जिय का कर सके, उस आतम को मान ॥ ४८ ॥
जो कर्मों से बद्ध भी, कर्म स्वरूप न होय ।
कर्म न भी तिस रूप हों, उस आतम को जोय ॥ ४९ ॥

एकान्त निराकरण

कइ कहें जिय सर्व गत, कई कहें जड़ रूप ।
कई कहे जिय देह वत, कई इक शून्य स्वरूप ॥ ५० ॥
किसी दृष्टि जिय सर्वगत, किसी दृष्टि जड़ रूप ।
किसी दृष्टि से देहवत दृष्टिहि शून्य स्वरूप ॥ ५१ ॥
कर्म रहित जो आतमा, केवल ज्ञान स्वरूप ।
लोकालोकहि जानता, इससे व्यापक रूप ॥ ५२ ॥
आतम ज्ञान ठहर हुये, जिय के इन्द्रिय ज्ञान ।
नाश होय इस कारणे, जड़ भी जीव पिछान ॥ ५३ ॥
शुद्ध जीव कारण विना, घटे बढ़े नहिं मान ।
चरम शरीर प्रमाण है, कहते जिनवर जान ॥ ५४ ॥
बहु विधि आठो कर्म युत, दोष अठारह और ।
शुद्ध जीव के इक नहीं, इससे शून्य हि ठौर ॥ ५५ ॥
जीव न उपजा किसी से और न कछु उपजाय ।
द्रव्य भाव से नित्य है, विनाशीक पर्याय ॥ ५६ ॥

द्रव्य स्वरूप

द्रव्य नाम उसको कहे, जो गुण पर्यय वान ।
नित्य रूप से गुण रहे, क्रम से पर्यय जान ॥५७॥
तू आतम को द्रव्य लख, गुण लख दर्शन ज्ञान ।
पर्यय चहुगति भाव तन, कर्म जनित पहिचान ॥५८॥
जीव कर्म हैं नादि से, जीव जनित नहिं कर्म ।
कर्म जनित नहिं जीव है, दोय अनादी धर्म ॥५९॥
यह आतम व्यवहार से, कर्म हेतु को पाय ।
बहु बिधि भावहिं परणवे, पुण्य पाप में धाय ॥६०॥
आठ तरह के करम ये, जीवों के पहिचान ।
तिनसे आच्छादित हुआ, लह न पद निर्वान ॥६१॥
विषय कषाय तलीन युत, मोही जीव प्रदेश ।
लगे अणू बस उन्हों को, कहते कर्म जिनेश ॥६२॥
पचेन्द्रिय मन भिन्न अरु, भिन्नहिं सर्व विभाव ।
चहुगति दुख भी भिन्न हैं, कर्म जनित जिय भाव ॥६३॥
जीवों के उपजावता, सुख दुख नाना कर्म ।
जाने देखे आतमा, ऐसा निश्चय मर्म ॥६४॥
जीवो के उपजावता, बन्ध मोक्ष सब कर्म ।
कछ न करता आतमा, ऐसा निश्चय मर्म ॥६५॥

आतम पगु समान है, स्वय न आवे जाय ।
तीन लोक के मध्य विधि, लावे अरु ले जाय ॥ ६६ ॥
निज निज ही है देह पर, निज पर द्रव्य न होय ।
पर भी द्रव्य न निज बने, निश्चय मत को जोय ॥ ६७ ॥
नहिं उपजे नहिं बिनसता, बध न मोक्ष कराय ।
ऐसा निनवर जीव को, निश्चय नय से गाय ॥ ६८ ॥
जनम मरण अरु नहिं जरा, चिन्ह वर्ण नहिं कोय ।
मज्ञा एक न जीव के, निश्चय नय को जोय ॥ ६९ ॥
तन के जनम र जरा क्षय, तन क वर्ण अनेक ।
तन के रोग अनेक है, तन के लिङ्ग अनेक ॥ ७० ॥
जरा मरण तन क निरख, मय मत ह निय मान ।
अजर अमर जो ब्रह्म है, उसको आतम जान ॥ ७१ ॥
छिद मिदे या नष्ट हो, यह शरीर हे धीर ।
निर्मल आतम ध्यान से, पावेगा भव तीर ॥ ७२ ॥
कर्म जनित हैं भाव सब, अन्य अचेतन द्रव्य ।
निश्चय जीव स्वभाव से, भिन्न बखाने सर्व ॥ ७३ ॥
आप छोड़ कर ज्ञान मय, अन्य पराये भाव ।
उनको तनकर ह निया, भावो आप स्वभाव ॥ ७४ ॥
अष्ट कर्म से रहित अरु, सकल दोष बिन थाय ।
दर्शन ज्ञान चरित्र मय, उस आतम को ध्याय ॥ ७५ ॥

निज को निज जो जानता, मत दृष्टा जिय होय।
मत दृष्टा होता हुआ, कर्म रह नहि कोय ॥७६॥

मिथ्यादृष्टि की मान्यता

पर्यय रत जे जीव है, सो मिथ्याती थाय।
बहु विधि बांधे कर्म को, तिनसे भव भटकाय ॥७७॥
दृढ घन चिकने कर्म हैं, भारी वज्र समान।
ज्ञान चातुरे जीव को, पटके खोटे थान ॥७८॥
जीव परणवे भ्रम सहित, लखे विपर्जें तत्व।
कर्म रचित जे भाव हैं, उनको अपने कृत्व ॥७९॥
मैं गौर मैं श्यामला, मैं हूँ वर्ण अनेक।
मैं पतला म थूल हू, एसा मूढ़ विवेक ॥८०॥
मैं अति ब्राह्मण वैश्य अरु, मैं क्षत्री अरु शेष।
मैं नर नारी नपुंसर, माने मूढ़ विशेष ॥८१॥
रूपवान बूढ़ा तरुण, पंडित उत्तम शूर।
बुद्ध श्वेत पट दिगम्बर, माने सब ही क्रूर ॥८२॥
मात पिता घर नारि सुत, सुता मित्र सब दर्व।
माया जाली मूढ़ यह, माने अपने सर्व ॥८३॥
दुख कारण जे विषय हैं, तिन सेवे सुख अर्थ।
मिथ्यादृष्टी जीव यह, क्या क्या करता व्यर्थ ॥८४॥

सम्यग्दृष्टि की भावना

काल लब्धि को पाय कर, ज्यों ज्यों मोह नशाय ।
त्यों त्यों दर्शन को लहे, तिमसे रूप लखाय ॥ ८५ ॥

आत्म न गोरा सांवला, आतम लाल न होय ।
आतम सूक्षम थूल नहि, ज्ञानी ज्ञानहि जोय ॥ ८६ ॥

आत्म ब्राह्मण वैश्य नहिं, और न क्षत्री होय ।
नर नारी नहिं नपुंसक, ज्ञानी ज्ञानहि जोय ॥ ८७ ॥

आतम बोध न दिगम्बर, श्वेताम्बर नहि होय ।
आतम एक न लिंग है, ज्ञानी ज्ञानहिं जोय ॥ ८८ ॥

आतम गुरू न शिष्य है, स्वामि न सेवक मान ।
कायर शूर न आतमा, ऊंच न नीच पिछान ॥ ८६ ॥

आतम मनुज न देव है, और न पशु पिछान ।
नारक कर्मी न आतमा, जाने साधु प्रधान ॥ ९० ॥

पंडित मूर्ख न आतमा, धनी रंक ,नहि लेश ।
बालक वृद्ध न तरुण है, ये सब कर्म विशेष ॥ ९१ ॥

पुन्य पाप धरमाधरम, काल खन्द नभ जोड ।
इनमें एक न आतमा, चेतन भावहि छोड ॥ ९२ ॥

आत्मोपदेश

आपुहि संयम शील तप, आपुहि दर्शन ज्ञान ।
आतम शाश्वत मोक्ष पद, निज अनुभवता जान ॥ ९३ ॥
दर्शन कोट न अन्य है, अन्य न कोइ ज्ञान ।
अन्य न कोइ चरण है, आतम छोड पिछान ॥ ९४ ॥
अन्य तीर्थ मत जाय जिय, अन्य गुरू मत जोड ।
अन्य देव मत चिन्तवे, आतम विमल हि छोड ॥ ९५ ॥
एक आप ही दर्श है, अन्य सर्व व्यवहार ।
इससे आपा चिन्तिये, जो त्रिभुवन में सार ॥ ९६ ॥
आपा निर्मल ध्याइये अन्य सर्व बेकाम ।
जिसके ध्यायक पावत, इक क्षण में निज धाम ॥ ९७ ॥
जिसके निर्मल भाव में, बसे न आतम ज्ञान ।
तिसके तप अरु श्रुत पठन क्या करले निर्वान ॥ ९८ ॥
इक आतम के ज्ञान से, होवे जग का ज्ञान ।
कारण केवल ज्ञान में, बसता सकल जहान ॥ ९९ ॥
निज स्वभाव लवलीन के, यह विशेषता योक ।
उस स्वभाव में शीघ्र ही, दरसे लोका लोक ॥१००॥
आप प्रकाशे स्वपर को, जैसे रवि आकाश ।
इसमें शंका मत करे, ऐसा वस्तु विलास ॥१०१॥
जैसे निर्मल जल विषै, तारे प्रगट प्रकाश ।
तैसे निर्मल आत्म में, लोका लोक प्रकाश ॥१०२॥

आतम के भान से, होवे निज पर भान ।
ातम को भान बल, हे सेवक तू जान ॥१०३॥

ज्ञान की प्रधानता

निन का निम ज्ञान से, होवे पल मे बोध ।
ान विकसित करो, अन्य अधिक की रोध ॥१०४॥
ातम को ज्ञान लख, जो निज करे पिछान ।
प्रदेश मे लोकवत, ज्ञानहि गगन प्रमान ॥१०५॥
आतम मे भिन्न है, वे भी होइ न ज्ञान ।
तीनों को छोड कर, तू आतम पहिचान ॥१०६॥
ज्ञान के गम्य है, क्यों कि देखता नान ।
तजे इन तीन को, उससे निज को जान ॥१०७॥
तक ज्ञानी ज्ञान मय लखे न आतम रूप ।
ाक मूढ न पावता ज्ञान मयी चिद्रूप ॥१०८॥
ं आतम दीखता, उनमे जाना जाय ।
निन को जानकर, उनमें शीघ्र समाय ॥१०९॥
गण अरु हरि हग जन, जिनका करते ध्यान ।
स अति जो ज्ञान मय, सो परमातमनान ॥११०॥
ी मति उनमें बसे, सो अति पुरुष बखान ।
मति तैसी गती, ऐसा नियम प्रधान ॥१११॥

जैमी मति तैसी गती, उसको पर भव पाय ।
उस कारण पर ब्रह्म को, छोड न पर को ध्याय ॥११२॥

आत्मा की प्रधानता

जीव द्रव्य से भिन्न जड, उमको पर पहिचान ।
पुदगल धर्म धर्म नभ, कालहि पचम जान ॥११३॥
जो आध चण भी करे, परमातम से राग ।
जलें पाप ज्यों काठ गिर, भस्म करे लघु आग ॥११४॥
मब चिंता को छोड कर, हे जिय निरचय होय।
चित्त परम पद धारके, देव निरजन जोय ॥११५॥
जो निज दर्शन परम सुख, पावेगा बल ध्यान ।
वह सुख निज को छोड कर, त्रिभुवन म न पिछान ॥११६॥
जो मुनि लहे अनन्त सुख, निज आतम को ध्याय ।
मो सुख इन्द्र न ले सके, देवी कोटि रमाय ॥११७॥
निज दर्शन से नत सुख, जो जिनवर के जोय ।
सो सुख श्रमण विराग क, अन्त क्रिया म होय ॥११८॥
निर्मल मन में दीसता, ब्रह्म शांति प्रत्यच ।
जैसे घन बिन गगन मे, रवि भापे अति स्वच्छ ॥११९॥
निर्मल देव न दीसता, राग रँगे मन मांहि ।
जमे मैले कांच में, मुख न दिसे भ्रम नाहि ॥१२०॥

मृग नैनी जिसके बसे, तिसे न ब्रह्म विचार ।
एक म्यान में जिम तरह, बने न दो तलवार ॥१२१॥
निर्मल मन में बुद्ध के, देव अनादि निवास ।
जिमि सरवर में हंस रत, तैसा मुझे निकाश ॥१२२॥
देव न मन्दिर शैल में, लेप चित्र में नाहिं ।
नित्य निरंजन ज्ञान मय, है समचित के माहिं ॥१२३॥

मोक्ष की महिमा

श्री गुरु मुझसे कृपा कर, कहो वचन परमार्थ ।
मोक्ष मोक्ष फल मोक्ष मग, जो होवे सत्यार्थ ॥१२४॥
शिष्य मोक्ष अरु मोक्ष फल, जो पूछा शिव हेत ।
उसको जिन भाषित सुनो, अरु लख भेद समेत ॥१२५॥
धर्म अर्थ अरु काम में, मोक्ष सकल शिर मोर ।
कहते ज्ञानी पुरुष इमि, अन्य न सुख का ठौर ॥१२६॥
यदि उत्तम नहिं होय तो इन सब में शिव लोक ।
तो तीनों को छोड़ जिन, क्यों जाते शिव लोक ॥१२७॥
मोक्ष न उत्तम सुख करे, तो उत्तम नहिं होय ।
पशु भी बन्धन बद्ध युत, इच्छा करे न कोय ॥१२८॥
जग से अधिक न होय यदि, गुण गण मुक्ती माहि ।
तीन लोक निज शीश पर, उसे धारता नाहिं ॥१२९॥

उत्तम सुक्ख न देय यदि, उत्तम मोक्ष न होय
सदा काल है जीव तो, सिद्ध न सेवे जोय ॥१३

हरि हर ब्रह्मा जिनवरा, मुनिगण भव्य सुजान
परम निरंजन मन रखे, सब ध्यावे शिव ज्ञान ॥१३

त्रिभुवन में इस जीव को, मोक्ष थान को छोड़
सुख कारण नहिं अन्य है, इससे शिव मन जोड़ ॥१३

कर्म कलंक विमुक्त जिय, सो परमातम प्राप्त
उसको शिव तू जानता, कहें बुद्ध विख्यात ॥१३

मोक्ष फल

दर्शन ज्ञान अनन्त सुख, जिसके छेद न हो
उसके है यह मोक्ष फल तद विपरीत न कोय ॥१३

मोक्ष मार्ग

शिव कारण जिय का परम, चारित दर्शन ज्ञान
ते मुनि तीनों आतमा, निश्चय करके जान ॥१३

जाने देखे अनुचर, निज से निज को कोय
दर्शन ज्ञान चरित्र युत, शिव कारण जिय सोय ॥१३

जो भाषे व्यवहार नय, दर्शन ज्ञान चरित्र
उसको घर है जीव तू, जिससे होय पवित्र ॥१३

दर्शन स्वरूप

द्रव्य यथा विध जान सब, और करो श्रद्धान ।
यही आत्म का भाव या, अविचल दर्शन जान ॥१३८॥
उन छह द्रव्यों को लखो, जिनसे जग भरपूर ।
आदि अन्त से रहित वह, कहें ज्ञान के सूर ॥१३९॥
जीव द्रव्य चेतन समझि, पच अचेतन खास ।
पुद्गल धरमाधरम नभ, भिन्न काल आकाश ॥१४०॥
मूर्ति रहित और ज्ञान मय, परमानन्द स्वभाव ।
निश्चय लख तू आतमा, नित्य निरंजन भाव ॥१४१॥
पुद्गल छह विध मूर्ति युत, शेष अमूर्तिक मान ।
बुद्ध कहें धरमाधरम, गति थिति कारण जान ॥१४२॥
सकल द्रव्य जिसमें बसे, निश्चय करके मान ।
उसको तू आकाश लख, ऐसा बच भगवान ॥१४३॥
वर्तन लक्षण वान को, काल द्रव्य तू मान ।
रत्न राशि ज्यों भिन्न भिन, त्यों अणु भेद पिछान ॥१४४॥
जीव रु पुद्गल काल युत, इन्हें छोड सब दर्व ।
इतर सु निज निज देश म, जान अखंडित सर्व ॥१४५॥
जिय पुद्गल तज शेष सब, गमनागमन विहीन ।
ऐसे वस्तु स्वरूप को, कहते ज्ञान प्रवीन ॥१४६॥

धर्माधर्मरु एक जिय, कहे असंख्य प्रदेश
गगन अनन्त प्रदेश है, बहु विधि पुद्गल देश ॥१४

जितने द्रव्य कहे गये, लोकाकाश निवास
एक क्षेत्र वासी यदपि, तदपि स्वगुण में वास ॥१५

जीवों के ये द्रव्य सब, निज निज कार्य करा
इससे चहुँगति दुःख को, सहते भव भटकाहि ॥१

दुख कारण ह जीव लख, पर द्रव्यों के भा
मोक्ष मार्ग म होई रत, शीघ्र मोक्ष को जाव ॥१

भली भाँति व्यवहार से, दर्शन म जु वख
अब तू ज्ञानरु चरण सुन, जिससे हो निर्वाण ॥१

ज्ञान स्वरूप

ये जैसे तिष्टे हुए, तैसा उनको मा
वही आत्म का भाव है, अथवा सम्यक्ज्ञान ॥१

जान मान कर आप पर, जो पर भावहि
वह निज शुद्ध स्वभाव ही, बुध के चारित होय ॥१

रतनत्रय का भक्त जो, उसका लक्षण ये
गुण समूह तज आत्म के, अन्य न उसके ध्येय ॥१

जो रतनत्रय ऽेष्ठ को, कहे आतमा बुद्
सो आराधक मोक्ष अरु, ध्यावे स्वातम शुद्ध ॥१

गुण मय निर्मल आत्म को, जो ध्यावे नित मान ।
परम श्रमण वह नियम से, शीघ्र लहे निर्वाण ॥१५६॥
मकल वस्तु को लखे अरु, ज्ञान प्रथम जो होय ।
भेद रहित वस्तू लखे, वह दर्शन तू जोय ॥१५७॥
दर्शन पीछे उपजता, जीवों के विज्ञान ।
भेद सहित वस्तू लखे, वही अचल है ज्ञान ॥१५८॥

चारित्र स्वरूप

सुख दुख सहता है जिया, ज्ञानी ध्यान तलीन ।
कर्म निर्जरा हेतु तप, उपधि रहित सो चीन ॥१५६॥
जिस दुख सुख को मुनि सहे, मन में धरि समभाव ।
उसमें सवर पुन्य अघ, होवे सहज स्वभाव ॥१६०॥
जब तक रहता मुनिवरा, आत्म रूप में लीन ।
तब तक सर्व विकल्प विन, सवर निर्जर चीन ॥१६१॥
पूर्व कर्म सो क्षय करे, आगत धमन न देय ।
मकल परिग्रह छोड़ कर, उपसम भाव करेय ॥१६२॥
दर्शन ज्ञान चरित्र जहँ, तहँ होते समभाव ।
ममचित विना जु एक है, कहते श्री जिन राव ॥१६३॥
जब तक ज्ञानी उपशमी, तब तक सयम मान ।
वह कषाय वश होय जब, तब मयमी न जान ॥१६४॥

तज मन से उस वस्तु को, जिससे जगे कषाय ।
वस्तु कषाय विहीन जब, तब सद् बोध लहाय ॥१६५॥
मन म तत्वातत्व लख, जो स्थिर सम भाव ।
सो अति सुखिया जगत मे, अरु रत आत्म स्वभाव ॥१६६॥
जो करता ममभाव को, ताक दूषण दोय ।
एक करे मधु हतन, दुतिय मत्त जग होय ॥१६७॥
जो करता मम भाव को, ताके दूषण और ।
शत्रु छोड क भाजता, परमातम के ठौर ॥१६८॥
जो करता मम भाव को, ताके दूषण और ।
विकल होय कर एकता, चरता जग सिर मौर ॥१६९॥
जिसमें सब जिय सो रहे, वाम जागे साधु ।
जिसम सब जिय जग रहे, तामें सोवे साधु ॥१७०॥
करे न कोई राग को, ज्ञानी तज ममभाव ।
इस कारण से ज्ञान मय, पावे आत्म स्वभाव ॥१७१॥
निंदा थुति नहि श्रमण के, पढ़े पढावे नाहि ।
मोक्ष हेतु समभाव को, देखे निश्चय माहि ॥१७२॥
उपधि विषे भी परम मुनि, करे न रागरु द्वेष ।
उपधि भिन्न जिसने लखा, आत्म स्वभाव अशेष ॥१७३॥
विषय विष भी परम मुनि, करे न रागरु द्वेष ।
विषय भिन्न जिसने लखा, आत्म स्वभाव अशेष ॥१७४॥

देह विषे भी परम मुनि, करे न राग रु द्वेष।
देह भिन्न जिसने लखा, आत्म स्वभाव अशेष॥ १७५॥
व्रत अव्रत में महा मुनि, करे न राग रु द्वेष।
बन्ध हेतु जिसने लखे दोनों भाव विशेष ॥१७६॥

पुन्यपाप स्वरूप

बन्ध मोक्ष कारण तनो, जो न लखे निज भाव।
वही मोह वश करत हैं, पुन्य पाप का चाव ॥१७७॥
दर्शन ज्ञान चरित्र मय, आतम लखे न कोय।
वही जीव उन उभय को, करता शिव हित जोय ॥१७८॥
जो नहिं माने जीव यदि, पुन्य पाप सम कोय।
सो चिर सहता दुःख जग, मोह आच्छादित होय ॥१७९॥
शीघ्र बुद्धि शिव की करे, पाप देय कर दुक्ख।
तो वह सुन्दर है जिया, कहते ज्ञान प्रमुक्ख ॥१८०॥
शीघ्र बुद्धि शिव की हरे, पुन्य उदय कर सुक्ख।
तो वह सुन्दर नहि जिया, कहत ज्ञान प्रमुक्ख ॥१८१॥
दर्शन सनमुख जो मरे, सो अति सुन्दर मान।
पुन्य करे दर्शन विमुख, सो सुन्दर न पिछान ॥१८२॥
दर्शन सनमुख जो रहे, पावे सुक्ख अनन्त।
जिस बिन करता पुन्य भी, सहता दुक्ख अनन्त ॥१८३॥

शुभ से धन धन से शु मद, मद से मति में मोहु ।
उससे अघ हो इसलिए शुभ मेरे मत द्रोहु ॥१८४॥
देव शास्त्र गुरु भक्ति से, होता पुन्य प्रधान ।
किन्तु न होवे कर्म क्षय, कहते जिन भगवान ॥१८५॥
देव शास्त्र मुनि वरन सो, जो करता है द्वेष
पाप बघ कर नियम से, भव में भ्रमें विशेष ॥१८६॥
पाप उदय से नरक पशु, पुन्य उदय सुर थान
मिश्र उदय से मनुज है, उभय नशे निर्वाण ॥१८७॥
वन्दन निन्दन क्रमण को, कारण पुन्य पिछान ।
बुद्ध करे न करावता, करते भला न मान ॥१८८॥
वन्दन निन्दन क्रमण को, कर न ज्ञानी एक ।
शुद्ध स्वच्छ अरु ज्ञान मय, भाव न छोड़े टेक ॥१८९॥
वन्दन निन्दन क्रमण में, जिसके भाव अशुद्ध ।
उसके सयम नहिं कहा, कारण चित्त अशुद्ध ॥१९०॥

शुद्धोपदेश

शुद्धहि सयम शील तप, शुद्धहिं दर्शन ज्ञान ।
शुद्धों के हों कम क्षय, इससे शुद्ध प्रधान ॥१९१॥
भाव शुद्ध निज है उसे, धर्म समझ कर धार ।
जो चहुँगति क दु ख से, सहजहि दइ निकार ॥१९२॥

शिव का मारग एक है, शुद्ध भाव धर ध्यान ।
जो मुनि चल उस मार से, किम पावे निर्वान ॥१९३॥
जहँ अच्छा तहँ जाव जिय, कर अच्छा जो होय ।
किन्तु न जबतक शुद्ध मन, तबतक मोक्ष न होय ॥१९४॥
शुभ भावनि से पुन्य है, अशुभ भाव से पाप ।
इन दोनों से विरहिता, कर्म न बाधे आप ॥१९५॥

ज्ञान की महिमा

लहे दान से भोग अरु, तप से सुरपति होय ।
जन्म मरण से रहित पद, लहे ज्ञान से जोय ॥१९६॥
देव जिनेश्वर इमि कहें, ज्ञानी मुक्ति लहाय ।
ज्ञान विहीना जीवड़ा, चिर संसार भ्रमाय ॥१९७॥
ज्ञान हीन के मोक्ष पद, हे जिय कभी न जोय ।
बहुत नीर के मथें जिम, चिक्कना हाथ न होय ॥१९८॥
आतम ज्ञान विन ज्ञान से, कछु न कारज होय ।
दुख कारण उस ही तरह, हे जिय तप भी जोय ॥१९९॥
आतम ज्ञान वह है नहीं, जिसमें पर मों प्रीत ।
सूर्य किरण के सामने, तम फैले किस रीत ॥२००॥
आतम छोड़ि पर बुद्ध के, अन्य न सुन्दर कोय ।
इससे रमें न विषय मन, परमार्थी का जोय ॥२०१॥

आप ज्ञान मय छोड़ कर, मन में अन्य न लाय ।
निर्मल मारग मति लगा, उस सौख्य विशाल ॥२०२॥

बन्धक भाव

जो जिय भोगे कर्म फल, भले बुरे धर भाव ।
वही कर्म को बांधता, करत मोह स्वभाव ॥२०३
जो जिय भोगे कर्म फल, भले बुरे तज भाव ।
वह न कर्म को बांधता, करत नाश उपाय ॥२०४॥
अणु मात्र भी राग से, जब तक रहे स्वार्थ ।
तब तक मुक्ति न लहे जिय, पढ़ि नाना परमार्थ ॥२०५॥
श्रुत धारक अरु तप कर, पर न लखे परमार्थ ।
तदपि न मुक्ती लहे जिय, बिन जाने परमार्थ ॥२०६॥
शास्त्र पढ़त भी मूर्ख है, जो नहिं तजे विकल्प ।
तन बसते परमात्म को, नहिं लखता गति अल्प ॥२०७॥
ज्ञान निमित्त सब श्रुत पढ़ें, निश्चय इस जग माहिं ।
किन्तु न निजका ज्ञान हो, वह क्या मूरख नाहिं ॥२०८॥

अज्ञान दशा

तीर्थ तीर्थ प्रति भ्रमण से, मूढ़ न मुक्ती पाहि ।
क्योंकि ज्ञान बिन है जिया, वह मुनिवर ही नाहिं ॥२०९॥

मुनि ज्ञानी अरु मूढ़ में, अन्तर भारी मान ।
ज्ञानी छोड़ देह भी, भिन्न जीव से जान ॥२१०॥
इस सब ही त्रैलोक्य को, यहु विधि धर्म उपाय ।
लेना चाह मूढ़ जन, यह अन्तर जिन गाय ॥२११॥
चेला चेली पुस्तकें, लख मूरख हरषाय ।
बन्ध हेतु ज्ञानी निरख, इन सब म शरमाय ॥२१२॥
पिछी कमन्डल पुस्तकें, चेला चेली और ।
मुनिनि मोह उपजाय कर, डाले खोटे ठौर ॥२१३॥
जिसने जिनवर भेष धर, शिर लोंचा ले राख ।
किन्तु न छोड़ा सग सब, सो निज ठग वे गाख ॥२१४॥
जो धर कर जिन भेष को, इष्ट वस्तु पुनि लेय ।
वही वमन कर उसी को, पीछे ग्रहण करेय ॥२१५॥
जो यश कीरत कारणे, आत्म ध्यान दें छोड़ ।
वही लोह की कील को देवालय दें तोड़ ॥२१६॥
बाह्य वस्तु से आपको, जो मुनि लखे महन्त ।
वह निश्चय परमार्थ को, नहिं जाने यह मत ॥२१७॥

समदृष्टि रखो

परमारथ ज्ञायकनि के, छोटा बड़ा न कोय ।
जीव सर्व पर ब्रह्म हैं, ऐसा निश्चय होय ॥२१८॥

रतनत्रय का भङ्ग जो, उसका लक्षण येह ।
किमी दह म जिय रह, मेद न करता तेह ॥२१९॥
जग वासी सब जियनि मे, मुख्य करत भेद ।
सानी वत्सल ज्ञान से, सब को लगे अभेद ॥२२०॥
सर्व जीव है ज्ञान मय, जन्म मरण से हीन ।
गुण प्रदश उन सबनि के, एक बराबर चीन ॥२२१॥
जीवा का लक्षण लखा, जिसने दर्शन ज्ञान ।
इससे मत कर भेद तू, जो मन प्रगटा भान ॥२२२॥
जग बसत सब जियनि म, जो नहि करते भग
वे परमात्म प्रकाश का, जाने निर्मल अग ॥२२३।
राग द्वेष को दूर कर, देखे सबहि समान
वे सम भाव निवास कर, शीघ्र लह शिव थान ॥२२४।
जीवों का लक्षण लखा, जिसने दर्शन ज्ञान
देह भेद उनके विषे, फिर ज्ञानी क्या मान ॥२२५।
देह भेद से जियनि म, जो करता बहु राग
वह लक्षण नहि जानता, चरण ज्ञान दृग साग ॥२२६
तन सूक्षम अरु बादरा, विधि वश होत बाल
और जीव सब सब जगह, उतने ही नर काल ॥२२७
सब निज शत्रु मित्र अरु, अपने और परान
ऐक्य भाव कर देखता, ताके आत्म पिछान ॥२२८

जो नहिं माने जीव यह, भव जिय एक स्वभाव ।
उसके रह न भाव मम, जो भवसागर नाव ॥२२९॥
जीव भेद ये कर्म कृत, कर्म न जीव कहाय ।
क्योंकि उन्हीं से भिन्न हो, काललब्धि की पाय ॥२३०॥
एक करो मत दो करो, मत कर वर्ण विशेष ।
क्योंकि शुद्ध मम ये बसें, सब त्रिभुवन के देश ॥२३१॥

परसंग निषेध

परम जानते परम मुनि, पर संसर्गहि छोड़ ।
पर संसर्ग जु ध्यान में, देय त्रिगुप्ती तोड़ ॥२३२॥
जो सम भावहि बाहिरा, उनका करो न संग ।
वे डारें भ्रम सिंधु में, और दहें सब अंग ॥२३३॥
भलों के गुण नष्ट हों, दुष्ट जनों के संग ।
लोह संग से अग्नि जिम, घन झेले सब अंग ॥२३४॥
हे जिय तज दे मोह को, मोह न अच्छा होय ।
सर्व लोक में मोह रत, दुख सहते ही जोय ॥२३५॥
नग्न रूप धर भयानक, मले मृतक वत काय ।
भिक्षा में मृदु अन्न की, इच्छि न क्यों शरमाय॥२३६॥
जो तू चाहे हे जिया, तप द्वादश का सार ।
तो मन वच अरु काय से, भोजन गृद्धि विसार ॥२३७॥

जो मृदु रस से तुष्ट हैं, नीरस करें रुषाय ।
ते मुनि भोजन गृद्ध हैं, उर न जग्य लगाय ॥२३८॥
तिनली रूप रु मीन रस, भ्रमर गन्ध मृग गीत ।
सन परशन से नाश लहत, ज्ञानी करें न प्रीत ॥२३९॥
हे जिय तज द लोभ को, लोभ न अच्छा होय ।
सर्व लोक म लोभ रत, दुख सहते ही जोय ॥२४०॥
तले निहाड उपरि घन, सारे सड़मा अग ।
कूटे पिटे उस बीच म, अनि लोह के सग ॥२४१॥
हे जिय तज द प्रेम को, प्रेम न अच्छा होय ।
सर्व लोक म प्रेम रत दुख सहते ही जोय ॥२४२॥
जल मासन मन्थन करत, जिसमें पुनि पुनि दूख ।
तिली तल के सग कर, पानी पिलें प्रसुख ॥२४३॥
वही धन्य अरु सत्पुरुष, वही जिये जिय लोक ।
जो न पतित यौवन समय, मा तिरता वे शोक ॥२४४॥

वैराग्य की दृढ़ता

शिव साधन जिन वर क्रिया, तन के बहु विधि साज ।
मिथ्या भानी जीव तू, कर न आतम काज ॥२४५॥
हे जिय तू ससार म, अमत लहे अति दुःख ।
अष्ट कर्म को जो नशे, तो पावे अति सुख ॥२४६॥

अशा मात्र हे जीव तू, मह न मके दुख कोय ।
तो भव कारण कर्म को, क्यों करता है जोय ॥२४७॥
जग धन्धे में लगे सब, करें कर्म भ्रम माहिं ।
शिव कारण पर ब्रह्म को, इक क्षण चिंते नाहिं ॥२४८॥
सर्व योनि में भटक कर, जीव सहे दुख पूर्ण ।
पुत्र कलत्रहि मोहिता, जब तक ज्ञान अपूर्ण ॥२४९॥
जिय मत जाने आपने, स्वजन मित्र घर काय ।
कर्माधीन अनित्य कर, श्रुत में मुनि गण गाय ॥२५०॥
मोक्ष न पावे जीय तू, कर चिन्ता घर द्वार ।
इससे उत्तम चिन्त तप, जिमसे हो भव पार ॥२५१॥
वधकर लागों जियन को, जो तू करता पाप ।
पुत्र कलित्रहि कारणे, सो तू भोगे आप ॥२५२॥
हे जिय जो तू जियनि को, मार चूरि दुख देय ।
उसका फल उस दृष्टि से, अमित गुणा ही लेय ॥२५३॥
जीव हने से नरक गति, अभय दान स्वर धाम ।
ये दोनों मग पास है, जो रुचि सो कर काम ॥२५४॥
मूढ़ अन्य सब नाश युत, भ्रम से मत तुप कूटि ।
शिव मग निर्मल प्रीत कर, घर सुत तिय से छूटि ॥२५५॥
हे जिय सबही नाश युत अविनाशी नहिं कोय ।
जीव साथ जावे न तन, यह दृष्टान्तहि जोय ॥२५६॥

द्रव देव थल शास्त्र गुरु, तीर्थ धर्म पद काव्य।
सब वस्तू अच्छी बुरी, इंधन वत् हो जॉब्य ॥२५७॥
एक ब्रह्म को छोड़ कर, सब जग रचना शेष।
क्षण भगुर सब वस्तु है, यह लख बात विशेष ॥२५८॥
सूर्य उदय जो दीखता, अस्त भये सो दाह।
इमसे हे जिय धर्म धर, तज धन योवन चाह ॥२५९॥
श्रावक भया न मुनि भया, पाकर नर पर्याय।
ताहि बुढ़ापा खायगा, मरें नरक गति पाय ॥२६०॥
हे जिय जिन पद भक्ति कर, सब सुख जन छुटकाय।
उस दादा से काम क्या, जो ससार भ्रमाय ॥२६१॥
जिसने किया न तप चरण, पाकर निर्मल चित्त।
उसने आतम को ठगा, ले नर जन्म पवित्र ॥२६२॥

विषय निषेध

ये पचेंद्रिय ऊँट हैं, इसको चरन न देहु।
यह चर कर सब विषय को, भटकावे भव येहु ॥२६३॥
कठिन ध्यान गति हे जिया, मन थिरता नहिं खाय।
मूर्ति विषय में सुख समझि, उन में पुनि पुनि जाय ॥२६४॥
यह है ध्यानी जो कहं, दर्शन ज्ञान चरित्र।
औ विषय से बाह्य हो, ध्यावे ब्रह्म पवित्र ॥२६५॥

विषय सुख दो दिवस के, पुनि दुख की भरमार ।
निज कन्धे पर हे जिया, मत कुल्हाड़ी मार ॥२६६॥
सत्ता विषय जो परिहरे, मैं पूजूं पग तास ।
जिसका गजा शीश है, स्वत मुडा वह दास ॥२६७॥
इन्द्रिय नायक वश करो, जिससे वश हों और ।
तरु की जड़ के नशत जिमि, सूखे पत्ता मौर ॥२६८॥
हे जिय विषयाशक्त तू, निरर्थक काल गमाय ।
निज अनुभव को अचलकर, अवश मोक्ष को पाय ॥२६९॥
निज अनुभव को छोड़ि मुनि, अन्य कहीं मत जाय ।
निज अनुभव में लीन बिन, दुख सहते ही थाय ॥२७०॥
काल अनादि अनादि जिय, भव सागर भी नन्त ।
लहा न जिय समकित तथा, भने न श्री अरहंत ॥२७१॥

देह निषेध

घर निवास को जान जिय, है जिय पाप निवास ।
यम फांसी से मण्डिता, है निश्चय कारावास ॥२७२॥
देह न जिसकी आपनी, उस में पर क्या होय ।
इससे निज हित छोड़कर, पर कारण मत जोय ॥२७३॥
कर निज अनुभव भाव इक, जिससे सुख की प्राप्त ।
अन्य न है जिय चिंतवें, जिनसे मोक्ष अप्राप्त ॥२७४॥

बलि जाऊं नर जन्म ये, दीसत तो कछु सार ।
भू गाड़े से सडत है, दाह किये हो छार ॥२७५॥
मर्दन उवटन क्रिया कर, मधुर देह आहार ।
सब निष्फल यह देह को, जैसे शठ उपकार ॥२७६॥
जैसे जनर नरक घर, वैसे है जिय काय ।
मैल मूत्र से भरा नित, क्रिम करता रति लाय ॥२७७॥
दु ख पाप अरु अशुचि सब, तीन लोक के लेय ।
इन से तन निर्मित किया, विधि ने वैर धरेय ॥२७८॥
हे जिय देह घिना बनी, रमते क्यों न लजाय
मन निश्चित कर धर्म में, अविचल प्रीत लगाय ॥२७९॥
हे जिय त्यागो देह को, देह भली नहि होय
देह भिन्न जो ज्ञान मय, उस आतम को जोय ॥२८०॥
दुख कारण इस देह को, मन म लख के त्याग
जिसम श्रेष्ठ न सुख लहे, उसमें बुध किम राग ॥२८१॥

थिरता स्वरूप

निजाधीन जो सुख है, उसम कर सतोप
अपर सुख चिन्तक जिया, चित्त दाह नहि गोप ॥२८२॥
ज्ञान छोड कर आप का, अन्य न द्वितिय स्वभाव
एसा लखकर हे जिया, तज पर वस्तू भाव ॥२८३॥

निसका चले न चित्त जल, इन्द्रिय विषय कषाय ।
उसकी आतम हे जिया, निर्मल हो प्रगटाय ॥२८४॥
जिसने वश कर चित्त को, किया न आतम शुद्ध ।
वह क्या करता योग से, जिसे न शक्ति विशुद्ध ॥२८५॥
आत्म ज्ञान मय छोड कर, कर अन्य का ध्यान ।
जो परणति अज्ञान मे, किम् लह केवल ज्ञान ॥२८६॥
शून्य शब्द जो ध्यावता, मैं पूजू पग तास ।
भाव समरसी अन्य से, पुन्य पाप नहि पास ॥२८७॥
सूने को वस्ती करे, वस्ती को कर शुन्य ।
मैं पूजू उस श्रमण को, जिसके पाप न पुन्य ॥२८८॥
मोह गले अरु शीघ्र ही, मन थिरता को धार ।
हे स्वामी उस वचन को, कहो अन्य को डार ॥२८९॥
स्वास नाक से निकल कर, जबे समाधि विलीन ।
मोह गले तब शीघ्र अर, मन थिरता म चीन ॥२९०॥
मोह गले अरु मन मरे, स्वासास्वास रु साधि ।
परम ज्ञान उत्पन्न हो, जिसका नाम समाधि ॥२९१॥
जो समाधि मे मन धरे, लोकालोक प्रमाण ।
मोह गले जब शीघ्र ही, पावे पद निर्माण ॥२९२॥

मूल भूल

दृढ़ यमत भी नहि लगा, आतम देव आन
समाधि ममरस मन बिना, है स्वामी नष्टत ॥२६
मरल राग भी नहि तजा, कर न उपशम भाव
मोक्ष मार्ग भी नहि लखा, जहँ यतियों से चाव ॥२६
दुर्धर तप भी नहि किया, जो शोभे निज बोध
पुन्य पाप नहिं क्षय किये, किम ससार निरोध ॥२६
दान न मुनिवर को दिया, पूजे पग न जिनश
पच परम गुरु नहि नमे, किम पावे शिव देश ॥२६
नेत्र अध खुले बन्द से, क्या पाता है ध्यान
नहि हो पावें परम गति, निश्चय थिरता थान ॥२६

चिन्ता निषेध

चिन्ता तज दे जीव तू, तो छूटे संसार
चिन्ता रत जिन राज भी, लहें न हमारार ॥२६
क्यों करता दुर्बुद्धि तू, भव कारण व्यवहा
शुद्धातम को जान कर, मन विकल्प को मार ॥२६
रूप पच अरु पंच रस, सर्व राग तज सेव
चित रोककर ध्याय तू, अनन्त आतम देव ॥३०
यह अविनाशी आतम को, जिस स्वरूप से ध्याय
तिस स्वरूप से परणवे, यथा फटिक परणाय ॥३०

यही आत्म परमात्म है, कर्म हेतु परयाय ।
जिस क्षण जाने आपको, उस क्षण ईश्वर थाय ॥३०२॥
जो परमातम ज्ञान मय, सो मैं देव अनन्त ।
जो मैं सो परमातमा, मावो भ्रम तज मत ॥३०३॥
चित मे परमेश्वर मिला, परमेश्वर में चित्त ।
दोना इकमिलि होगये, अरघ चढाउँ किस ॥३०४॥

भिन्नता

जैसे निर्मल फटिक से, सर्व रंग हैं दूर ।
तैसे आत्म स्वभाव मे, कर्म भाव सब दूर ॥३०५॥
जैसे निर्मल फटिक मणि, आत्म भाव त्यों मान ।
काय मलिनता देखकर, आतम मलिन न जान ॥३०६॥
लाल वस्त्र स होय नहि, देह न जैसे लाल ।
देह लाल से त्यों सुधी, आत्म न माने लाल ॥३०७॥
जीर्ण वस्त्र से ज्यों सुधी, देह न माने जीर्ण ।
देह जीर्ण से त्यो सुधी आत्म न माने जीर्ण ॥३०८॥
वस्त्र नष्ट से ज्यों सुधी, देह न माने नष्ट ।
देह नष्ट से त्यौं सुधी, आत्म न माने नष्ट ॥३०९॥
अलग वस्त्र से देह को, जैसे मानें बुद्ध ।
अलग देह से आत्म को, तैसे मानें बुद्ध ॥३१०॥

यह तन तेरा शत्रु है क्यों कि दुःख उपजाय ।
जो इस तन को कर क्षय, उसके तू गुण गाय ॥३११॥
उदय लाय म कर्म को, करन सहन था भोग ।
स्वय आगया वह यहीं, परम लाभ का योग ॥३१२॥
निष्ठुर वचन सुन क्षमा किया, सह न सके मन तोर ।
शीघ्र ध्यान पर लक्ष कर, जिससे मन सम श्रोर ॥३१३॥
जीव विलक्षण कर्म वश धारें भव जु अनेक ।
विस्मय कथा जो था मथित, पड़ न भव जल एक ॥३१४॥
अवगुण मर ग्रहण कर, जो होवे सतोष ।
सो म सुख कारण हुआ, यह लख करो न रोष ॥३१५॥
हे जिय दुख से तू डर, तो चिन्ता को त्याग ।
अ श मात्र की शल्य भी, करती दुख से राग ॥३१६॥
मत कर चिन्ता मोक्ष की, चिन्ता मोक्ष न देय
जिससे जीव बँधा हुआ, उनसे क्या शिव लेय ।३१७।

समाधि

परम समाधि समुद्र म, जो घुस कर हो लीन
विमल ध्यान वह ठहरता, जिससे भव मल क्षीन ॥३१८।
सब विकल्प के नाश को, परम समाधि कहाव
इसम मुनिवर छोड़ते, सर्व शुभाशुभ भाव ॥३१९

घोर तपस्या जो करे, अरु मय श्रुत से युक्त ।
तो भी परम समाधि विन, शांत स्वरूप न युक्त ॥३२०॥
विपय कपाय विनाशकर, जो न समाधि धरत ।
हे जिय वे परमात्म के, नहिं आराधक सत ॥३२१॥
जो मुनि परम समाधिघर, लखें न आतम अन्त ।
वे बहुविध भव दुखिनिके, भोगे काल अनन्त ॥३२२॥
भाव शुभाशुभ जब तलक, दूर न होवे कोय ।
तबतक मन में जिन कहें, परम समाधि न होय ॥३२३॥

अरहन्त सिद्ध

सकल विकल्पनि नाशकर, शिव मारग थिर होय ।
कर्म घातिया नाश कर, आतम अरहत जोय ॥३२४॥
दिव्य ज्ञान से सतत ही, जाने लोकालोक ।
निश्चय परमानन्द मय, आतम अरहत थोक ॥३२५॥
जो जिय केवल ज्ञान मय, परमानन्द स्वभाव ।
वह परमातम पर पर, हे जिय आतम भाव ॥३२६॥
सकल कर्म अरु दोष से, जो जिन देव विहीन ।
उसको ब्रह्म प्रकाश तू, ह जिय निश्चय चीन ॥३२७॥
केवल दर्शन ज्ञान सुख, वीर्य अनन्त जु पाम ।
वह जिन देव जु परम मुनि, जानहु परम प्रकाश ॥३२८॥

परमातम या परम पद, हरि हर ब्रह्मा बुद्ध ।
परम प्रकाशरु मुनि कहें, सो जिन देव विशुद्ध ॥३२९॥
कर्म ध्यान से नाश कर, जो होता शिव नन्त ।
उसे कहा जिन देव ने, है निय सिद्ध महन्त ॥३३०॥
हित कारक वे सर्व के, शाश्वत सुख स्वभाव ।
सब काल जिनसे यहां, है निय पाय स्वभाव ॥३३१॥
जन्म मरण से रहित अरु, चहुँ गति दुख से मुक्त ।
केवल दर्शन ज्ञान मय, उस सुख से संयुक्त ॥३३२॥

ग्रन्थ महिमा

श्रुत परमात्म प्रकाश को, जो चिन्ते धर भाव ।
सर्व कर्म को जीत कर, सो परमारथ पाव ॥३३३॥
जो जाने दृढ भक्ति से, श्रुत परमातम प्रकाश ।
लोकालोक प्रकाश का, केवल ज्ञान प्रकाश ॥३३४॥
जो परमात्म प्रकाश का, नाम जपे नित कोय ।
मोह शीघ्र उनका गले, अर जग स्वामी होय ॥३३५॥
जो भव दुख से डर गया, अर इच्छे निर्वाण ।
वह परमात्म प्रकाश के, परम योग्य हैं जान ॥३३६॥
जो परमातम भक्ति युत, रमे न विषय कषाय ।
वे परमात्म प्रकाश के, श्रवण योग्य सुखदाय ॥३३७॥

ज्ञान विलक्षण शुद्ध मन, भव्य पुरुष जो कोय ।
सो परमात्म प्रकाश क, योग्य कहे मुनि जोय ॥३३८॥
लक्षण छन्द विवर्जिता, यह परमातम प्रकाश ।
शुद्ध भाव भाया करे, चहु गति दुख का नाश ॥३३९॥
इसमें गहो न पन्डिता, पुनुरुक्ती का दोष ।
भट्ट प्रभाकर हेतु मे, पुनि पुनि आतम पोष ॥३४०॥
जो मैंने इसमें किया, युक्तायुक्त बखान ।
क्षमा करो उत्तम मुझे, निज परमारथ जान ॥३४१॥
ज्ञान रूप यह तत्व है, परम श्रमण नित ध्याय ।
देह विना यह तत्व है, बसे मन निज काय ॥३४२॥
दिव्य देह मे तत्व यह, जगत श्रेष्ठ मुनि ध्याय ।
जिसे सिद्ध यह तत्व है, ते मुनि शिव पद पाय ॥३४३॥
जैवतो अरहत पद, अरु समाधि मुनिराय ।
केवल ज्ञान स्वभाव निज, ताहि न विषयी पाय ॥३४४॥

समाप्त



* श्री वीतरागाय नमः *

* श्री महा मुनि वीरसागर प्रणीत *

* योगसार *



योगसार को योग से, वन्दों तीनों काल ।
योगसार भाषा सुगम, दोहा रचूँ रसाल ॥



निर्मल ध्यान लगाय कें, कर्म कलङ्क जलाय ।
अपना पद प्रापत किया, उस आतम सिर नाय ॥ १ ॥

चार घातिया नाश कर, नन्त चतुष्टय पाय ।
तिम जिनवर क चरण नमि, रचौं काव्य सुखदाय ॥ २ ॥

जो भव से भय भीत हैं, मोक्ष लालसा मग ।
तिन के हित दोहा करूँ, कर मनको इक रग ॥ ३ ॥

काल अनादि अनादि जिय, भव सागर जु अनन्त ।
मिथ्या दर्शन वश भया, सुख न लहा दुख वन्त ॥ ४ ॥

जो भव दुख से भय करे, तो पर भाव विहाय ।
निर्मल आतम ध्यान करि, जिससे शिवसुख पाय ॥ ५ ॥
बहिर रु अन्तर आतमा, परमातम त्रय जोड़ ।
अन्तरात्म बनि ब्रह्म भज, बहिरातम पन छोड़ ॥ ६ ॥
मिथ्या दर्शन वश भया, परमातम नहि पाय ।
उसको बहिरातम कहा, पुनि पुनि भव भटकाय ॥ ७ ॥
जो ध्यावे पर ब्रह्म को, सब पर भाव निवार ।
अन्तरात्म उसको कहें, जो त्यागे संसार ॥ ८ ॥
निर्मल निष्कल शुद्ध जिन, विष्णु बुद्ध शिव शांत ।
परमातम उसको कहा, इसमें कछू न भ्रांत ॥ ९ ॥
देह आदि पर द्रव्य में, जो आतम रुचि लाय ।
उसको बहिरातम कहा, पुनि पुनि भव भटकाय ॥ १० ॥
देह आदि पर द्रव्य में आतम लेश न कोय ।
इह लख हे जिय आत्म को, तू आतम ही जोय ॥ ११ ॥

भावदृष्टि

जो आतम को आत्म लख, तो निर्वाण कमाय ।
समझे पर को आत्म यदि, तो संसार भ्रमाय ॥ १२ ॥
जो बिन इच्छा तप करे, आप आप को ध्याय ।
शीघ्र लहे सो परम गति, फिर संसार न पाय ॥ १३ ॥

बन्ध मोक्ष परिणाम से, जिनवर क्रिया बखान ।
यही समझ कर हे जिया, उन मात्रा को जान ॥ १४ ॥
आत्म न जाने अरु करे, पुन्यहि पुन्य विशेष ।
तो नहि पावे मोक्ष सुख, पुनि भव भ्रम विशेष ॥ १५ ॥
इक निज दर्शन परम है, निश्चय करक मान ।
ह निय कारण मोक्ष रा, अन्य न कछु पिछान ॥ १६ ॥
मारगणा गुण थान का, कथन समझ व्यवहार ।
निश्चय से लख आत्म मय, जिससे पन पद धार ॥ १७ ॥
घर बसते भी जो रखें, हयाहय विचार ।
मिशन्ति ध्यात्र दव जिन, ते शित्र शीघ्र सिधार ॥ १८ ॥
जिन सुमिरें निज चितवो, जिन ध्यावो मन घोय ।
निमक ध्यायें परम पद, एक निमिष म होय ॥ १९ ॥

आत्म निर्णय

जिनवर अरु शुद्धात्म म, भेद न कछु पिछान ।
मोक्ष हतु ह जीव तू, यह निश्चय कर मान ॥ २० ॥
जो जिन सो लख आतमा, यह सिद्धान्त जु सार ।
यही समझ कर हे जिया, तज दे मायाचार ॥ २१ ॥
जो भगवन सो म यथा, जो म सो भगवान ।
यही समझ कर ह जिया, कछु न विकल्प ठान ॥ २२ ॥

जो हैं शुद्ध प्रदेश कर, लोकालोक प्रमाण ।
उसे सदा आतम समझ, शीघ्र लहे निर्वाण ॥ २३ ॥
निश्चय लोक प्रमाण है, तन प्रमाण व्यवहार ।
इमि स्वभाव लख आत्मका, शीघ्र होय भव पार ॥ २४ ॥
लख चौरासी में फिरत, बीतो काल अनन्त ।
किन्तु न समकित को लहा, यह सशय अतियन्त ॥ २५ ॥
शुद्ध सचेतन बुद्ध जिन, केवल ज्ञान स्वभाव ।
ऐसा निशदिन आतम लख, जो इच्छा शिव लाव ॥ २६ ॥
जब तक ध्याय न जीव तू, निर्मल आतम स्वभाव ।
तब तक मोक्ष न पायगा, जहँ भावे तहँ जाव ॥ २७ ॥
जो सब जग का ध्येय नित, निश्चय आत्म बखान ।
निश्चय नय से इमि कथन, इसम भ्रांति न जान ॥ २८ ॥

व्यवहार निषेध

व्रत तप सयम शील ये मूढ़हि मुक्ति न दाय ।
एक परम सुध भाव का, जब तक ज्ञान न पाय ॥ २६ ॥
जो निर्मल आतम लखे, व्रत सयम से युक्त ।
लहे सिद्ध सुख शीघ्र वह, कह ज्ञान सयुक्त ॥ ३० ॥
व्रत तप सयम शील ये, कछू न कारन दाय ।
एक परम सुध भाव का, जब तक ज्ञान न पाय ॥ ३१ ॥

बसे पुन्य से स्वर्ग पद, अघ से नरक निवास ।
इन तज ध्यावे आतमा, तो पावे शिव वास ॥ ३२ ॥
व्रत तप संयम शील ये, सब मानो व्यवहार ।
शिव कारण वश एक लख, जो त्रिभुवन में सार ॥ ३३ ॥
आप आप से जान कर, अरु छोड़े पर भाव ।
सो पावे शिवपुरी भट, कहते श्री जिन राव ॥ ३४ ॥
नव पदार्थ छह द्रव्य अर सात तत्व जिन गान ।
सो भाखे व्यवहार से, तिन्ह यत्न सो जान ॥ ३५ ॥
सर्व अचेतन जान इक, जीव सचेतन सार ।
जिसे जान कर परम मुनि, शीघ्र लहे भव पार ॥ ३६ ॥
यदि निर्मल आतम लखे, तज के सब व्यवहार ।
दव जिनेश्वर इमि कहें, शीघ्र लहे भव पार ॥ ३७ ॥

विवेक सूचक

जीवाजीवहि भेद को, लखे सु ज्ञाता मान ।
शिव कारण इतना कहा, ह जिय मत बखान ॥ ३८ ॥
यदि तू चाहे मोक्ष को, ऐसा सत बखान ।
केवल ज्ञान स्वभाव युत, आतम को पहिचान ॥ ३९ ॥
को समाधि पूजा करे, कौन जु फर्शा फर्श ।
को मैत्री को कलह कर, सब थल आतम दर्श ॥ ४० ॥

गुरु प्रसाद से जबतलक, लखे न आतम राम ।
तब तक भ्रम कुतीर्थ में, और करे ठग काम ॥ ४१ ॥
तीर्थ दिवालय देव नहिं, इमि भाखें भगवान ।
देह दिवालय देव जिन, तू निश्चय कर जान ॥ ४२ ॥
देह दिवालय देव जिन, जन देखें जिन भवन ।
मुझ हास्यमा भासता, जिम भिक्षा नृप भ्रमन ॥ ४३ ॥
मृद दिवालय देव नहिं, नहिं मिल लेप रु चित्र ।
देह दिवालय देव जिन लख समचित से मित्र ॥ ४४ ॥
तीर्थ दिवालय देव जिन, कहत हैं सब कोय ।
देह दिवालय जो लखे, सो विरला ही होय ॥ ४५ ॥

धर्म प्रेरणा

जनम मरण भयभीत यदि, तो निज धर्म रसाय ।
धर्म रसायन पियत ही, अजर अमर पद पाय ॥ ४६ ॥
धर्म न दीखे पठन में, पुस्तक दिखे न धर्म ।
धर्म न दीखे मठ बसे, लोंचे केश न धर्म ॥ ४७ ॥
राग द्वेष को त्याग कर, जो निज वास करेय ।
उसे धर्म जिनवर कहा, जो परम गति देय ॥ ४८ ॥
आयु गले मन नहिं गले, आशा छेद्य न जाय ।
मोह करे निज हित नहीं, इमि संसार भ्रमाय ॥ ४९ ॥

ज्यों मन विषयों में रमैं, त्यों निज में रमि जाय ।
ह जिय तो योगी कहैं, शीघ्र मोक्ष को पाय ॥ ५० ॥
जैसे जाजित नरक घर, तैसे लखो शरीर ।
आत्म भाव निर्मल करे, शीघ्र लहे भव तीर ॥ ५१ ॥
जग धन्धे में फसे सब, करें न निज पहिचान ।
इस कारण से जीव ये, लहें न पद निर्वाण ॥ ५२ ॥
शास्त्र पढ़ भी मूर्ख है, जो न करे निज ज्ञान ।
इस कारण से जीव ये, लहें न पद निर्वाण ॥ ५३ ॥
मन इन्द्रिय छुट जाय तो, फेरि न पूछो कोय ।
राग न्यून है जाय तो, सहज आत्मथिति होय ॥ ५४ ॥

स्वपर बोध

पुद्गल अन्य रु अन्य जिय, अन्य सर्व व्यवहार ।
तज पुद्गल गहु जीव को, शीघ्र होय भव पार ॥ ५५ ॥
जीवहि प्रगट न समझत, और न करें विज्ञान ।
न न छुटें संसार से, इमि जिनदेव बखान ॥ ५६ ॥
दीपक दिनकर रतन अरु, और दूध पाषाण ।
कनक रूप अग्नी फटिक, नव दृष्टान्त विज्ञान ॥ ५७ ॥
स्फटिक पर जो लखे, यथा शू य आकाश ।
ज्ञान प्राप्त कर जग को, कर निज कर प्रकाश ॥ ५८ ॥

जस शुद्धाकाश है तैसे आतम शुद्ध ।
किन्तु जड़ आकाश है, आतम चेतन बुद्ध ॥ ५९ ॥
नासा दृष्टि स्थिर हो लखे, भीतर निज अशरीर ।
फिर न जन्म मृत्यू धरे, पिये न माता क्षीर ॥ ६० ॥
अशरीरहि सुन्दर समझि, यह शरीर जड़ मान ।
मिथ्या मोह निवारि के, जड़हि न अपना जान ॥ ६१ ॥
निज से निज को लखे से, क्या फल नहीं लहाय ।
इससे केवल ज्ञान धृत, शाश्वत सुख को पाय ॥ ६२ ॥
जो पर भावहि त्याग कर, निज से निज को ध्याय ।
केवल ज्ञान जु पाय कर, भव से छुट्टी पाय ॥ ६३ ॥
उस पंडित को धन्य है, जो पर भावहि खोय ।
लोकालोक प्रकाश कर, विमल आतमहि जोय ॥ ६४ ॥
श्रावक हो या श्रमण हो, जो करता निज वास ।
शीघ्र लहे सो मोक्ष सुख, जिनवर वच इमि खास ॥ ६५ ॥
विरले जाने तत्त्व को, विरले तत्त्व सुनन्त ।
विरले ध्यावें तत्त्व को, विरले तत्त्व धरन्त ॥ ६६ ॥

वैराग्य

स्वजन न मेरे मात्र इक, सुख दुख के दातार ।
इम विचार से शीघ्र ही, नाश होय संसार ॥ ६७ ॥

इन्द्र फणीन्द्र नरेन्द्र भी शरण न राखे कोय ।
शरण रहित निज जानि मान निज ने निज को जोय ॥ ६८ ॥
उपजे विनसे एकला, सुख दुख भोगे एक ।
नरक स्वर्ग में जाय कर, लहे सिद्ध पद एक ॥ ६९ ॥
यदि तू सब बल एकला तो पर भावहिं छोड़ ।
आतम ध्यान कर ज्ञानमय, शीघ्र मोक्ष सों जोड़ ॥ ७० ॥
लखें पाप को पाप ही, ऐसा सब जग होय ।
लखें पुन्य को पाप सम, ऐसा विरला कोय ॥ ७१ ॥
जैसे सांकल लोह की, तैसे कंचन जोय ।
तज इन शुभ अरु अशुभका, तब तू ज्ञानी होय ॥ ७२ ॥
तेरा मन निर्ग्रन्थ जब, तब तू भी निर्ग्रन्थ ।
जब तू है निर्ग्रन्थ नित, तब पावे शिव पन्थ ॥ ७३ ॥
ज्यों वट मध्ये बीज है, बीज मध्य वट मान ।
त्यों तन में भी देव लख, जो त्रिलोक्य प्रधान ॥ ७४ ॥

हेयाहेय

जो जिन सो मैं हूं उसे, भज भ्रम तज सिर मौर ।
शिव कारण को है जिया, मंत्र तंत्र नहिं और ॥ ७५ ॥
द्वय त्रय चउ अरु पाँच छह, सात आठ नव मान ।
इत्यादिक परमात्म के, ये सब लक्षण जान ॥ ७६ ॥

राग द्वेष तज दृग मात्त, जो   रमता   निज धाम ।
सोऽत्र मौक्ष वह पावता, एसा जिन वच याम ॥ ७७ ॥
राग द्वेष अरु मोह तज, जो   रत्नत्रय   धार ।
वह शाश्वत सुख पावता, ऐसा जिन वच सार ॥ ७८ ॥
चउ कषाय संज्ञा रहित, ज्ञान   चतुष्टय   धार ।
उसे जान तू आतमा, जिससे हो भव पार ॥ ७९ ॥
पच परावर्तन रहित, पच सिद्ध गुण युक्त ।
उसे सदा परमातमा, निश्चय नय से युक्त ॥ ८० ॥
निज का दर्शन ज्ञान निज, निज का चारित मान ।
निज को संयम शील तप, निज को प्रत्याख्यान ॥ ८१ ॥
जो निज पर को जानता, सो पर को दे त्याग ।
उसे जानि सन्यास तू, रहत परम विराग ॥ ८२ ॥
रत्नत्रय संयुक्त निज, श्रेष्ठ तीर्थ शिर मौर ।
शिव कारण को ह निजा, मत्र तत्र नहि और ॥ ८३ ॥
जो देखे सो दर्श है, जो जाने सो ज्ञान ।
पुनि पुनि निजको भावता, सो चारित्र पिछान ॥ ८४ ॥
जहां आत्म तहँ सकल गुण, जिनवर देव बखान ।
इससे मुनिजन नित करें, श्रेष्ठ आत्म पहिचान ॥ ८५ ॥
तू इकला इन्द्रिय रहित, मन वच काय विहीन ।
निज से निज को जान तू, शीघ्र होय शिव लीन ॥ ८६ ॥

बन्ध मोक्ष जब तक लखे, तब तक बन्धहिं पाय ।
सहज रूप में रमि रह, तो शिव शांति लहाय ॥ ८७ ॥

सम्यग्दृष्टि की महिमा

सम्यग्दृष्टी जीव का, दुर्गति गमन न होय ।
यदि जावे तो नहा भी, पूर्व कर्म को खोय ॥ ८८ ॥
निज स्वरूप जो रमि रहे, तज के सब व्यवहार ।
वह समदर्शी जीव ही, शीघ्र होय भव पार ॥ ८९ ॥
निमक समकित मुख्य है, वह त्रैलोक्य प्रधान ।
शाश्वत सुःख निधान मय, पावे केवल ज्ञान ॥ ९० ॥
अजर अमर गुणगण निलय, जहँ आतम थिर होय ।
वहा जीव निर्ग्रन्थ है, पूरब सचय खोय ॥ ९१ ॥
कमल पत्र जिम तरह से, सलिल लिप्त नहिं होय ।
निज स्वभाव रत उस तरह, कर्म लिप्त नहिं होय ॥ ९२ ॥
जो सम सुख में लीन है, पुनि पुनि निज को ध्याय ।
शीघ्र कर्म क्षय वह करे, फिर शिवपुर को जाय ॥ ९३ ॥

ज्ञान की महिमा

पुरुषाकार प्रमाण यह, आत्म शुद्ध जिन गाय ।
दीखे गुणगण निलय अरु, निर्मल तेज फुराय ॥ ९४ ॥

अशुचि देह से भिन्न कर, शुद्धातम को चीन ।
सो जाने सब शास्त्र अरु, शाश्वत सुख तलीन ॥ ९५ ॥
जो नहिं जाने आप पर, नहिं त्यागे पर भाव ।
पर जाने सब शास्त्र को, तदपि न शिव सुख पाव ॥ ९६ ॥
सब विकल्प से रहित हो, परम समाधी पाय ।
वह सुख अनुभव जो करे, सो शिव सुख कहाय ॥ ९७ ॥
श्रुति पढ़ि अथवा मन्त्र जपि, अरहत् सिद्ध स्वरूप ।
ध्यान भेद ये चार हैं, कहें केवली भूप ॥ ९८ ॥

संयम भेद

सर्व ज्ञान मय जीव लख, जो धारे सम भाव ।
सामायिक उसको कहा, प्रगट केवली राव ॥ ९९ ॥
राग द्वेष के त्याग से, जो होवे सम भाव ।
सामायिक उसको कहा, प्रगट केवली राव ॥ १०० ॥
हिंसा दिक को त्याग कर जो निज में थिर होय ।
उसे द्वितिय चारित कहा, फल पंचम गति जोय ॥ १०१ ॥
मिथ्यातम को त्यागकर, जो लह दर्शन शुद्धि ।
शीघ्र लहे वह मोक्ष फल, सो परिहार विशुद्धि ॥ १०२ ॥
उदय न तीव्र कषाय है, उदय सूक्ष्म इक लोभ ।
सूक्ष्म चरण उसको कहा, जिनवर ने बिन क्षोभ ॥ १०३ ॥

यही आत्मा

जिनजिनवर अरु सिद्ध सब, अरु आचार्य स्वरूप।
उपाध्याय अरु साधु सब, परमारथ निज रूप ॥१०४॥
आतम व्यापक नित्य है, हरि हर ब्रह्मा बुद्ध।
जिन ईश्वर सर्वज्ञ है, अरु अनन्त शिव शुद्ध ॥१०५॥
इन लक्षण से लक्षिता, जो अति निष्कल देव।
वही देह में निवसता, तिस में कछु न भेव ॥१०६॥
जो सिध अवतर हो चुके, या अब कोई होय
निज दर्शन से होहिंगे, इसमें भ्रांति न कोय ॥१०७॥
भव दुख से भयभीत है, योग चन्द्र मुनि पीन
निज संबोधन अर्थ में, इन दोहों को कीन ॥१०८॥

समाप्त

❋ नयाभासी ❋

व्यवहाराभासी

व्यवहारी जिन वचन सुन, उद्धत रहे ले पख ।
निश्चय बिन कैसे कहें, रहें शख के शख ॥

निश्चयाभासी

परमारथ जिन वचन सुन, उद्धत रहे ले पख ।
संयम बिन कैसे कहें, रहे शख के शख ॥

मिथ्याभासी

कहि निश्चय व्यवहार कहि, उद्धत रहे ले पख ।
मैत्री बिन कैसे कहें, रहे शख के शख ॥

उपाय

दो नय विषय विरोध को, स्याद्वाद से जीत ।
नमन होत मिथ्यात के, समयसार सों प्रीत ॥

कैसे

चर्या में व्यवहार नय, सरधा में नय शुद्ध ।
दो नय रस साधन करे, वही जीव प्रति बुद्ध ॥

तात्पर्य—नय कथन परस्पर नय पक्ष होना एक स्वाभाविक सा है किन्तु जो व्यवहार को बाहर और निश्चय को भीतर धारण करते हैं वे पुरुष स्याद्वाद रूप आर्हत शस्त्र से नय विरोध को जीत आत्मा में स्थिर होते हैं और अल्प काल में निर्वाण प्राप्त करते हैं ।